5

प्रबन्धकीय दावेदार संस्थाओं के बीच अलगाव प्रवृति

स्पष्ट रूप से के.एफ.सी.एस. की वर्तमान स्थिति, भूमिका और भविष्य के बारे में काफी भ्रान्ति बनी हुई है । एक तरफ, के.एफ.सी.एस. जैसी पहल का 1971 में कुछ लोग अन्त हुआ मानते हैं, जब हिमाचल प्रदेश का पुनर्गठन हुआ, और इन्हें दिया जाने वाला सहायक अनुदान बन्द कर दिया गया । दूसरी और बहुत सी के.एफ.सी.एस., विरोधी स्थिति की परवाह किए बिना काम किए जा रही है । कड़ी कानूनी दृष्टि से देखा जाए तो सहकारी सभाओं का वैध अस्तित्व बना हुआ है । परन्तु उनकी वास्तविक स्थिति उलझावपूर्ण है, क्योंकि कई क्षेत्रों में वन सहकारी सभाएं वन विभाग से मिलकर उनके अधीनस्थ वनों का प्रबन्धन कर रही हैं और कई क्षेत्रों में वह वन प्रबन्ध में कोई भी सक्रिय भूमिका नहीं निभा रहीं । हल ढूढ़ने से पहले, प्रत्येक दावेदार संस्था द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाएं और उन द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोणों का, एक विश्लेषण नीचे दिया गया है । लेखक द्वारा वर्तमान स्थिति पर की गई टिप्पणियां तालिका न. 3 में दी गई हैं ।

राज्य सरकारों की भूमिका

पंजाब सरकार (1937 से 1966 तक)

बहुत पहले अर्थात् वर्ष 1955 में भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राजनैतिक तन्त्र में के.एफ.सी.एस. के यथावत कार्यरत रहने के बारे में संदेह व्याप्त था । जुलाई 1, 1955, को पंजाब के मुख्यमन्त्री भीमसेन सच्चर ने निन्मलिखित टिप्पणियां की ।[23]

1. के.एफ.सी.एस. योजना मात्र 73 सहकारी सभाओं तक फैल पाई, जिनके अन्तर्गत कांगड़ा की कुल 6,00,000 एकड़ भूमि में मात्र 60,000 एकड़ भूमि आई । यह बड़ी असंतोषजनक प्रगति थी और उनका मत था कि प्रगति कम होने का कारण के.एफ.सी.एस. को दिए जाने वाले सहायक अनुदान की सीमा 50,000/- रूपये निर्धारण करना था ।

2. सहायक अनुदान की सीमा बढ़ाने से पहले, इस योजना का निम्न सिद्धान्तों के अनुसार संशोधन करना चाहिए :-

(क) वन सहकारी सभाओं को समाप्त करके वनों का प्रबन्ध पंचायतो के हाथ में दे देना चाहिए । सहकारी सभाओं का आधार विस्तृत नहीं था क्योंकि इसकी सदस्यता खेवटदारों तक ही सीमित थी और उनका भी पूरा प्रतिनिधित्व नहीं होता था । यह सिद्धान्त कि गांव के संसाधनों से होने वाला लाभ गांव के सभी बरतनदारों के बजाए केवल सीमित समुदाय को मिले, गलत था । दूसरे, लाभ का वितरण व्यक्तियों को उनके लाभांश के रूप में करना भी गलत था । तीसरे, पंचायतों को विकसित करना, सरकार का प्रकट उत्तरदायित्व था, जो सारे क्षेत्र के लिए गठित हुई थी, इसलिए उनसे ही यह काम लिया जाना उचित था ।

(ख) यदि यह योजना सारे वन क्षेत्र में लागू नहीं हो सकती तो इसे त्याग देना चाहिए । इस योजना के अन्तर्गत केवल 73 गांवों को, जिनमें के. एफ.सी.एस. थी, विशेष सहायक अनुदान दिया जाना सरकार द्वारा उन्हें अनुचित व्यवहारिक अधिमान दिया जाने जैसा था क्योंकि यह अनुदान अन्य 513 गांवों को नहीं मिलता था ।

(ग) के.एफ.सी.एस. के अधिकार क्षेत्र से आरक्षित वनों को निकाल देना चाहिए क्योंकि के.एफ.सी.एस. का कार्य व लक्ष्य असीमाङ्कित संरक्षित वनों के विकास का था ।

उपरोक्त अवधारणाओं और सरकार की इस योजना के निरन्तर वित्तीय सहायता दिए जाने की चिन्ता के आधार पर - श्री सच्चर ने वन विभाग को एक व्यापक योजना बनाने के लिए कहा । कोई भी ऐसे अभिलेख नहीं मिलते

हैं, कि उपरोक्त आग्रह के अनुसार ऐसा किया गया अथवा समस्त जिला के वन क्षेत्रों के लिए कोई संशोधित योजना बनाई और प्रस्तावित की गई । बल्कि हमीरपुर तहसील में गठित की गई दो के.एफ.सी.एस. को 1955-56 में विभाग द्वारा त्याग दिया गया, जबकि वह मात्र अधिसूचना जारी होने की प्रतीक्षा में थी, कि इस तरह वह कभी अस्तित्व में नहीं आई । वर्ष 1955 के इस प्रसंग से ही लगता है राजनैतिक इच्छा-शक्ति व समर्थन, के.एफ.सी.एस. योजना से हटा लेने की शुरूआत हो गई । इससे साफतौर पर प्रकट होता है कि वन विभाग के.एफ.सी.एस. योजना के प्रयोग के लक्ष्यों और साध्यों के बारे में अथवा इसकी उपलब्धियों और प्रमाणित शक्तियों के बारे में मुख्यमन्त्री को कायल न कर सका और इसी कारण इस योजना को चालू रखने के लिए राजनैतिक प्रश्रय व समर्थन प्राप्त करने में भी असफल रहा । सरकार ने के.एफ.सी.एस. योजना का आगामी विस्तार के.एफ.सी.एस. से बिना विचार विमर्श अथवा वार्ता किए न करने का निर्णय लिया । लेखक के विचार से यह राजनैतिक सूझबूझ और सरकारी समर्थन दोनों के अभाव को प्रदर्शित करता है । इस सब के बावजूद के.एफ.सी.एस. योजना चलती रही और वर्ष 1961 में और स्वायत्त बन गई क्योंकि अब के.एफ.सी.एस. को सहायक अनुदान के स्थान पर राजस्व वापिस मिलने लगा था ।

हिमाचल व हिमाचल प्रदेश सरकार (वर्ष 1967-1997 तक)

1966 में जब पंजाब का पुनर्गठन हुआ तो कांगड़ा हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित किया गया । हिमाचल प्रदेश जनवरी 1971 में भारतीय गणतन्त्र का पूर्णराज्य घोषित हुआ । दो तत्वों की के.एफ.सी.एस. के भविष्य बारे विरोधी भूमिका रही इनमें से पहला था - राज्य की नई राजनैतिक व्यवस्था का के.एफ.सी.एस. जैसी पहल के बारे में अनुभव और जानकारी का अभाव । कुछ पहलुओं की दृष्टि से, हिमाचल के नये और पुराने क्षेत्रों के बीच का टकराव ही के.एफ.सी.एस. की दुर्दशा का कारण बना । कुछ लोगों का कहना है तत्कालीन हिमाचल सरकार जिसमें पुराने हिमाचल के क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व अधिक था वह के.एफ.सी.एस. जैसी पहल के लिए धन उपलब्ध कराने व उसका समर्थन करने के पक्ष में नहीं थी । के.एफ.सी.एस. के वनों में पेड़ों की शक्ल में इमारती

लकड़ी में वन-ठेकेदारों का निहित स्वार्थ था, के.एफ.सी.एस. के लिए राजनैतिक समर्थन घटाने में उनका भी हाथ कहा जाता है[24] ।

नये हिमाचल राज्य को पंजाब से सहभागी वन प्रबन्धन का एक अद्वितीय संस्थागत ढांचा विरासत में मिला । अब उसके पास, लोगों द्वारा वन-प्रबन्धन पर संवेदनात्मक ढंग से दृष्टि डालने और समस्त पहाड़ी क्षेत्र के लिए टिकाऊ एवं व्यवहारिक प्रदर्शन का नमूना तैयार करने का सुनहरा अवसर था ।

कारण कुछ भी हो, वन विभाग ने ऐसा करने के बजाए, के.एफ.सी.एस. पर नियन्त्रण के अधिकार को पाने के बाद, इस सामुदायिक वन प्रबन्धन की पहल पर घातक प्रहार किये । तदपि अगले कुछ वर्षो में वन सहकारी सभाओं को पुनर्जीवित करने और उन पर एक नवीन दृष्टि डालने के विभिन्न प्रयास किए गए । वर्ष 1980 में वन मन्त्री ने के.एफ.सी.एस. को नये सिरे से वित्तीय सहायता देने के विषय पर सिफारिशें करने के लिए एक कमेटी[25] का गठन किया । 1981 में उक्त कमेटी ने सिफारिश की कि के.एफ.सी.एस. को पूर्व-वत काम करने की आज्ञा दी जाए । यह मामला विधान सभा में उठाया गया और उसकी अगली बैठक में वनमन्त्री ने के.एफ.सी.एस. को वित्तीय सहायता 1982 से आगे बहाल करने की सिफारिशों को अनुमोदित कर दिया । इन प्रभावशाली कथनों का कोई परिणाम न निकला । हिमाचल सरकार ने वर्ष 1990 में के.एफ.सी.एस. के पुनर्व्यवस्थापन[26] के लिए जांच-पड़ताल करने के लिए एक और कमेटी गठित की परन्तु उन्हीं दिनों विधान सभा का अवसान हो गया और कमेटी अपना कार्य पूर्ण न कर सकी । फिर 1993 में पंजीकार (सहकारी सभाएं) द्वारा किए गए निर्देशों के अनुसार, सहायक पंजीकार (सहकारी सभाएं) ने के.एफ.सी.एस. के पांच प्रतिनिधियों की प्रदेश स्तरीय कमेटी के.एफ.सी.एस. के पुनर्व्यवस्थापन के लिए गठित की । हांलाकि इस कमेटी की औपचारिक बैठक अभी बुलाई जानी है ।

वन-विभाग की भूमिका

वन-विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. को समर्थन देने की पहल में निभाई गई भूमिका को चार अवस्थाओं में बांटा जा सकता है ।

अवस्था 1 : 1940/1 से 1954/5

वन-विभाग ने के.एफ.सी.एस. योजना को आरम्भ करते समय एक अनोखी और भिन्न विचारधारा का मार्ग प्रशस्त किया, जो पुरानी और उस समय प्रचलित वन-संरक्षण प्रणाली से काफी हट कर थी । अलग वित्तीय और तकनीकी आंबटन किए गए और उनका कड़ाई से क्रियान्वयन करने एवं के.एफ. सी.एस. के समर्थन व सहायता के लिए स्वतन्त्र संस्थागत ढांचा खड़ा किया गया। अवधारणा पूरक सोच से लगा कि इस पहल ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति की है और इसलिए 1955 के आरम्भ में यह सिफारिश की गई कि इस योजना को हमीरपुर व नूरपुर तहसीलों तक फैलाया जाए

अवस्था 2 : 1955/6 से 1966/7 तक

1955 के बाद पंजाब सरकार से मिलने वाली इस योजना के लिए सहायता में एक दम गिरावट आ गई और इसे उपलब्ध वित्तीय प्रावधान भी घटा दिए गए । 1966 में पंजाब राज्य के पुनर्गठन के समय कांगड़ा हिमाचल का भाग बन गया, इसके साथ ही उक्त परिवर्तन और भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा ।

अवस्था 3 : 1967/8 से 1972/3 तक

आरम्भ में थोड़ी-बहुत स्वायत्तता जो के.एफ.सी.एस. को कार्य करने में उपलब्ध थी वह आर.डी. रावल द्वारा तैयार की गई केन्द्रीकृत एकीकृत कार्य योजना को लागू करके और घटा दी गई - यह कार्य योजना 1968 में प्रकाशित हुई और 1985 तक प्रभावी रही । इस काल तक के.एफ.सी.एस. की पहल का मौलिक आधार दुर्बल किया जा चुका था और वन विभाग की सहकारी सभाओं द्वारा वन प्रबन्धन करवाने में रूचि निरन्तर घटती जा रही थी। वास्तव में वन विभाग ने, इसके बावजूद कि प्रत्येक के.एफ.सी.एस. को अपने वन प्रबन्ध की कार्य योजना को अनुमोदित करने में स्वायत्तता लिखित रूप में प्राप्त थी, वन प्रबन्धन का अधिकार अपने में निहित कर लिया । लेखक के विचार में वन विभाग, के.एफ.सी.एस. द्वारा कड़ी मेहनत द्वारा सफलतापूर्वक उगाए वनों से होने वाले लाभ पर पुनः नियन्त्रण प्राप्त करने में दिलचस्पी रखता था ।

वर्ष 1971 में जब कांगड़ा हिमाचल का भाग बन चुका था, के.एफ.सी. एस. प्रयोग नये हिमाचल के वन विभाग के पास पहुंच गया । के.एफ.सी.एस. योजना आरम्भ में 1971 से आगे स्वीकृत नहीं की गई और एक वर्ष तक इसकी नींव व आधार पर ही प्रश्न उठते रहे । हिमाचल सरकार के.एफ.सी.एस. के दबाव में आ गई और उसने वन विभाग को पीछे करते हुए अधिसूचना[27] द्वारा सभाओं का कार्यकाल दो वर्ष के लिए पूर्व शर्तों पर बढ़ा दिया । दूसरा इससे जाहिर था कि के.एफ.सी.एस. को सहायक अनुदान 1972 व 1973 के लिए दिया जाना था । पर वास्तव में यह वित्तीय सहायता उन्हें 1980 तक उपलब्ध न हुई । वन विभाग ने वर्ष 1973 में कांगड़ा जिला के हिमाचल में विलय के अधिनियम में एक कानूनी रास्ता पाकर के.एफ.सी.एस. योजना को पुनः अधिसूचित करने से इन्कार कर दिया । ऐसा होने से, के.एफ.सी.एस. की भूमिका और इसकी कानूनी स्थिति के बारे में अनिश्चितता पूरे तौर पर दिखने लगी क्योंकि यह सहकारी सभाएं थीं और इन्हें पंजीकृत किया जाता था । अब वन-विभाग और के.एफ.सी.एस. दोनों के विवादित वन-भूमि पर अपने-2 अधिकारों के बारे में सीधे तौर पर विरोधी विचार थे । इसका स्पष्ट उदाहरण के.एफ.सी.एस. गहीन लगोड़ में हुई एक घटना में मिलता है (देखें तालिका 2)

"मरण्डा भंगियार के एक वन भाग में भारी भूक्षरण का स्तर" बहुत वर्षों तक के.एफ.सी.एस. के सदस्य यहां पौधे लगाना चाहते थे पर इस कारण न लगा सके क्योंकि वन विभाग उन्हें कानूनी तौर पर मान्यता नहीं देता था ।

तालिका सं. 2: गहीन लगोड़ वन सहकारी सभा का एक किस्सा

गांव के बूढ़े व्यक्ति, इस किस्से को सुनाते थे, उनकी नज़र भले ही कमज़ोर हो गई हो पर स्मृति ठीक थी । किस्सा उन दिनों का है, जब वन-मण्डल अधिकारी सामने दिखने वाले पूरे क्षेत्र के राजा होते थे । उन दिनों वन-सहकारी सभाएं अभी गठित ही हुई थीं और उन्होंने लोगों की संस्था के रूप में कार्य करना शुरू किया था । मुझे इस किस्से की सच्चाई को सत्यापित करने का कोई रास्ता नहीं दिखता पर यह कहानी सुनाने योग्य है।

एक वन मण्डल अधिकारी जो नया-नया नूरपुर वन मण्डल में नियुक्त हुआ था उसको एक वन रक्षक मिला, जिसकी बेटी की शादी होने वाली थी । उसने साहिब से एक सूखा पेड़, उत्सव में ईंधन की जरूरत पूरी करने के लिए, स्वीकृत करने की प्रार्थना की । उन दिनों की प्रचलित प्रथा के अनुसार वन मण्डल अधिकारी ने तत्काल एक सूखे पेड़ की स्वीकृति दे दी । वन विभाग कर्मचारियों ने गहीन लगोड़ वन सहकारी सभा के जंगल में जाकर एक उपयुक्त पेड़ अंकित किया और उसे काट गिराया ।

के.एफ.सी.एस. के प्रधान इस धोखे से विस्मित होकर इसे सभा का अपमान समझा क्योंकि वन-मण्डल अधिकारी को इस प्रकार की कार्यवाही करने से पहले सभा की सहमति आवश्यक थी । वह सभा के वन अधिकारियों के साथ मौके पर पहुंच गया और वन विभाग के कर्मचारियों से औज़ार छीन लिए, सम्बन्धित वन रक्षक के विरूद्ध नुकसान की रपट दर्ज करा दी ।

वन मण्डल अधिकारी सभा के इस अखड़पन से नाराज हो गया और उसने महसूस किया कि उसकी शक्तियों को चुनौती दी गई है । उसने पुलिस में सभा के प्रधान के विरूद्ध शिकायत दर्ज करवा दी जिसमें उस पर अपने कर्तव्य को निभाने में व्यस्त वन विभाग के कर्मचारियों के उत्पीड़न का आरोप लगाया । जब पूछताछ शुरू हुई तो यह प्रश्न खड़ा हुआ कि वनों सम्बन्धी शक्तियां जो वन मण्डल अधिकारी का निर्द्वद्ध अधिकार था, वह लोगों की सभा को दी कैसे जा सकती थी । कार्यकारिणी ने सफाई देने का प्रयास किया पर उसे नकार दिया गया, तब कार्यकारिणी ने अपने अभिलेखों में वह अधिसूचनाएं तलाश की जिनके अन्तर्गत के.एफ.सी.एस. का गठन किया गया था और उन्हें शक्तियां प्रदान की गई थी । अभिलेखों में कुछ न मिलने पर उन्होंने वन विभाग व सहकारिता विभाग के नूरपुर में नियुक्त कर्मचारियों से उन दस्तावेजों की प्रतियां मांगी जो उपलब्ध हो गए थे । उस समय फोटो-कॉपिग मशीनें नहीं होती थीं । अत: उन दस्तावेजों के फोटो लिए गए और उन्हें पुलिस स्टेशन में साक्ष्य के तौर पर पेश किया गया ।

के.एफ.सी.एस. के प्रधान व सदस्यों ने धर्मशाला से आए साहिबों से उनकी मदद करने का निवेदन किया पर सब व्यर्थ रहा । सभा के प्रधान ने अपने को सरकार के व्यवहार से ठगा सा अनुभव किया - क्योंकि एक तरफ तो सरकार ने के.एफ.सी.एस. का गठन किया और उसके लिए एक भूमिका निर्धारित की और दूसरी ओर - के.एफ.सी.एस. योजना की अवधारणा का सम्मान न करते हुए, अपने ही विभागों पर शर्तों को लागू नहीं

किया । प्रधान ने वन मण्डल अधिकारी के विरूद्ध मानहानि का दावा दायर कर दिया किन्तु सहकारिता विभाग के हस्तक्षेप से उसे मुकद्दमा त्याग देने के लिए राज़ी कर लिया गया ।

मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ क्योंकि सम्बन्धित वन मण्डल अधिकारी कांगड़ा जिला का अरण्यपाल बन गया । वह उन निर्माणधीन कार्ययोजनाओं का भी प्रभारी था जो के.एफ.सी.एस. की भूमिका से सम्बन्धित थी । वह अपना अपमान नहीं भूला था – जबकि एकमात्र सभा ने वन विभाग के अधिकारी को कार्यवाही के लिए चुनौती दे दी थी । इस महत्वपूर्ण पद पर आसीन हो कर के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन और शामलात भूमि को उसने एक बार फिर वन विभाग में निहित कर दिया (यद्यपि तकनीकी तौर पर वे नहीं थे) और वन विभाग को यह कहने के लिए सक्षम कर दिया कि अब क्योंकि वन और शामलात भूमि के.एफ.सी.एस. के पास नहीं उन्हें सहायक अनुदान देना आवश्यक नहीं । उस समय से वन विभाग तकनीकी बहाने प्रयोग करके यह सुनिश्चित करता रहा कि 1973 के बाद के.एफ.सी.एस. को सहायक अनुदान न मिल पाए । के.एफ.सी.एस. को इस तरह असहाय बना कर छोड़ दिया गया ।

अवस्था 4 : 1973/74 से 2000/01

इस दौरान गैर इमारती लकड़ी वन उत्पादों का राष्ट्रीयकरण हो गया और कानूनी तौर पर वन प्रबन्धन राज्य ने अपने हाथ में ले लिया जिसमें इमारती लकड़ी के लिए पेड़ काटना भी शामिल था । इससे वन विभाग को बिना कोई कारण बताए, काटी गई इमारती लकड़ी से प्राप्त राजस्व में से जमीदारी हिस्सा खेवटदारों को देने का अनुबन्ध समाप्त करने का बहना मिल गया । इस तरह कुछ ही वर्षों में, सफलतापूर्वक उजड़े वनों को पुनर्जीवित करने के बाद, के.एफ.सी.एस. ने न केवल अपना वन प्रबन्धन का अधिकार और वन विभाग से मिलने वाली तकनीकी एवं अन्य प्रकार की सहायता खोई बल्कि सहायक अनुदान व जमींदारी हिस्सा जो इनका मुख्य आय साधन था, भी खो दिया । इस क्षेत्र में पेड़ों को कटान के योग्य होने के लिए 30 से 40 वर्ष लगते हैं । के.एफ.सी.एस. ने उजड़ी वन भूमि अपने प्रबन्ध में लेने के 30 वर्ष बाद वनों पर अपना अधिकार खो दिया अथवा यह ऐसे समय पर हुआ जब दशकों तक के.एफ.सी.एस. द्वारा किए गए संरक्षण, वन रोपण और नियन्त्रित निकासी से यह वन पुनर्व्यवस्थित हो चुके थे और अपनी भरपूर क्षमता को पहुंच चुके थे ।

बावजूद पेचीदा-अन्तर्संस्था-सम्बन्धों के, के.एफ.सी.एस. को दी जाने वाली विविध प्रकार की समर्थन सहायता का, सूत्रपात करने, क्रियान्वयन करने, तकनीकी सहायता करने और के.एफ.सी.एस. को आगे बढ़ाने की मुख्य-जिम्मेंवारी, वन विभाग की थी । 1973 के पश्चात वन-विभाग ने 70 के.एफ.सी.एस. के अस्तित्व और उनके प्रति अपने उत्तरदायित्व की अवहेलना कर दी ।

1980-90 के दशक के आरम्भ में कुछ वन-मण्डल-अधिकारियों ने कुछ सभाओं (जैसे भगोटला) को रावल-कार्य-योजना के अनुसार-गतिविधियों के क्रियान्वयन कर काम सौंपा, विशेषकर आबंटित क्षेत्रों में, वन-रोपण और उसका संरक्षण । अन्य वन मण्डलों में के.एफ.सी.एस. को काम में सम्मिलित नहीं किया गया । बाद में वन विभाग ने के.एफ.सी.एस. के लिए बनाई गई पृथक-एकीकृत कार्य-योजना को अमान्य कर दिया और के.एफ.सी.एस. के वनों को राज-क्षेत्रीय-वन-मण्डलों की कार्ययोजना में शामिल कर लिया व इस पग को उठाने के लिए के.एफ.सी.एस. की राय तक नहीं ली । वन विभाग द्वारा ऐसा रूख अपनाने के कारण तालिका 3 में दिए गए हैं ।

के.एफ.सी.एस. उनकी वन प्रबन्धन और संरक्षण की योग्यता पर वन-विभाग के विश्वास न रहने की स्थिति से के.एफ.सी.एस. को समन्वय करने में बहुत कठिनाई सामने आई, फिर भी बहुत सी के.एफ.सी.एस. ने 1942 से अनुसरण किए जा रहे व लिखित प्रबन्ध-सिद्धान्तों पर कार्य करना जारी रखा । वास्तव में, कानूनी संदिग्धता एवं भूमिकाओं का अस्पष्ट सीमाङ्कन ही इस सारी समस्या की जड़ थी ।

सहकारिता-विभाग की भूमिका

सहकारिता विभाग और वन विभाग के.एफ.सी.एस. को सहायता देने में विभिन्न भूमिकाएं निभाते थे, पर इस बात पर अक्सर भ्रान्ति बनी रही कि किसे क्या करना था । क्योंकि के.एफ.सी.एस. का पंजीकरण सहकारिता अधिनियम के अन्तर्गत इसी विभाग द्वारा किया जाता था इसलिए अन्तिम उत्तरदायित्व उस पर ही ठहरा । सहकारिता विभाग का कर्मचारी वर्ग, जो इस प्रयोग के प्रति संवेदनाशील था, इन्हें प्रशासनिक-बल प्रदान करने का काम करता था जिसमें, लेखा-जोखा व लेखा जांच करना और संस्था प्रबन्ध में सहायता

करना शामिल था । सहकारिता विभाग आरम्भ से ही विभाग में के.एफ.सी.एस. अनुभाग स्थापित करके, समस्याओं व कार्य योजना पर विचार विमर्श के लिए के.एफ.सी.एस. सदस्यों की मासिक बैठकें आयोजित करवा कर कार्य को सुचारू रूप से चलाने में जिम्मेदारी एकीकृत होकर नये हिमाचल के सहकारिता विभाग पर आ पड़ी । पर नए सहकारिता विभाग ने न तो के.एफ.सी.एस. को बल प्रदान करने के लिए कर्मचारी ही-प्रति-नियुक्त किए न ही कोई विशेष प्रभाग स्थापित किया ।

के.एफ.सी.एस. की मासिक गतिविधियों, जिसमें लेखाजोखा व लेखा जांच भी शामिल है, के प्रबन्ध की जिम्मेदारी जो पहले पंजाब के सहकारिता विभाग के विकास अनुभाग के प्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा सम्भाली जाती थी अब हिमाचल प्रदेश के सामान्य सहकारी सभाओं के कार्यभार से दबे सहकारिता विभाग पर आन पड़ी । यह हिमाचल प्रदेश के सहकारिता विभाग का कर्मचारी वर्ग न तो के.एफ.सी.एस. के विशेष लेखा शीर्षो के अन्तर्गत लेखाजोखा करने में समर्थ था और न ही वन विभाग से इन के.एफ.सी.एस. के लिए सहायता उपलब्ध करवाने की विधि से परिचित था । यद्यपि सहकारिता विभाग के.एफ. सी.एस. को प्रशासनिक बल प्रदान करता था और अनियमित ढंग से बैठके भी आयोजित करवाता पर 1971 से या यूं कहिए 1966 से ही के.एफ.सी.एस. अनाथ हो गई । विभाग ने, लगता है के.एफ.सी.एस. योजना को चालू रखने के लिए कोई जिम्मेदारी स्वीकार नहीं की ।

अन्त में सहकारिता विभाग ने अपने आप को कुछ प्राथमिक सहकारी सभाओं का ही जिम्मेदार विभाग समझ लिया, जिनके पास कोई सम्पदा जैसे वन इत्यादि नहीं थे, जिनसे आय पैदा की जाती हो । उत्तरदायी संस्थाएं यथा वन विभाग व सरकार के.एफ.सी.एस. के गत 23 वर्ष से किए गए पत्राचार के बावजूद उनके तर्को के प्रति संवेदनहीन रहे । के.एफ.सी.एस. के पुनर्जीवन के लिए सहकारिता विभाग के मुख्यालय से किए गए पत्राचार से अतिरिक्त पंजीकार (सहकारी सभाएं) धर्मशाला के कार्यालय में फाइलें भरी पड़ी हैं । के. एफ.सी.एस. को "सामाजिक वानिकी योजना" एवं तदनन्तर, "वन लगाओं रोजी कमाओं" जैसी योजनाओं से जोड़ने के लिए अरण्यपाल धर्मशाला से भी पत्राचार किया गया । के.एफ.सी.एस. के सघन प्रयासों और इन नई वन सम्बन्धी

योजनाओं से जुड़ने में अपनी रूचि प्रदर्शित करने वाले प्रस्ताव भेजे जाने पर भी वन विभाग ने साफ मना कर दिया । इसके लिए वन-विभाग का तर्क था कि "कांगड़ा जिला को दिया गया लक्ष्य बहुत छोटा है और यह कि निर्देशों के अनुसार इन योजनाओं का कार्यान्वयन के.एफ.सी.एस. के अतिरिक्त सामुदायिक संस्थाओं द्वारा करवाया जाना है जबकि इन योजनाओं के लिए बनाई गई मार्गदर्शिका में किसी भी ऐसी संकीर्ण सोच का भास नहीं होता है । सहकारी विभाग के.एफ.सी.एस. के लेखाओं की जांच जारी रखे हुए है और वर्ष 1993 से लेकर प्रति सभा 1200/- वार्षिक अनुदान प्रबन्ध कार्य के लिए देता आ रहा है । सहकारिता विभाग की भूमिका सीमित है तदपि वह के.एफ.सी.एस. की उनके संघर्ष में सहायता नहीं कर पाया है ।

के.एफ.सी.एस. की भूमिका

के.एफ.सी.एस. को धीरे-धीरे अपने वनों के संरक्षण से मिलने वाले लाभों से वंचित कर दिया गया और वे धीरे-धीरे जमींदारी हिस्से से आय, बिरोजे व इमारती लकड़ी की बिक्री में से मिलने वाले भाग और सहायक अनुदान भी खो बैठे । अपने वनों पर नियन्त्रण के अधिकार को लेकर भ्रान्ति और वन विभाग द्वारा वनों का प्रबन्धन व कार्य योजनाओं का क्रियान्वयन अपने हाथ में ले लेने के कारण अब के.एफ.सी.एस. की वैधानिक मान्यता कम हो गई । जो प्रभावी सामुदायिक वन प्रबन्धन का मूल तत्व थी ।

यद्यपि कुछ के.एफ.सी.एस. जैसे खलेट, त्रिपाल व गहीन लगोड़ के पास सशक्त नेतृत्व था, फिर भी उनके यथा-स्थिति के विरोध के प्रयास, सहकारिता विभाग व वन विभाग के अधिकारियों और राजनैतिक पदाधिकारियों को पृथक-2 लिखे गए पत्रों, प्रस्तावों और याचिकाओं तक ही सीमित रहे । अभी तक के. एफ.सी.एस. सदस्यों द्वारा गिने चुने सामूहिक प्रयास ही किए गए हैं और इनके पास कोई संगठित सांझा मंच नहीं है जो वन विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. को उनके वनों से बेदखल करने के प्रयासों के विरूद्ध लामबन्द कर सके । के.एफ. सी.एस. की एक दूसरे से दूरी, उन क्षेत्रों तक कठिन पहुंच जहां वे स्थित हैं और 70 के.एफ.सी.एस. को अपनी सान्झी समस्याओं पर चर्चा करने और सान्झे भविष्य की योजना बनाने के लिए, एक मंच पर लाने वाले संस्थागत ढांचे का

अभाव ही राज्य की नई सोच संयुक्त प्रभावी विरोध किए जाने में बाधक बना ।

वनों के संरक्षण और रखरखाव जैसे दूभर कार्य से होने वाले लाभों से हाथ धो बैठने के कारण सदस्यों में स्वामित्व की भावना में कमी आना भी के. एफ.सी.एस. की निष्क्रियता का अतिरिक्त कारण बना । वर्तमान में के.एफ.सी. एस. का औसत सदस्य के.एफ.सी.एस. की मौजूदा स्थिति व महत्व के बारे में संदेहयुक्त है और अनुभव करता है कि के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन, वन विभाग द्वारा प्रबन्धित वनों से कहीं बढ़िया और लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक सक्षम और लाभदायक थे । जब कभी यह पूछा गया कि क्या वनों का प्रबन्ध पंचायतों को दे दिया जाए उत्तर न में होता । उन्हें पंचायतों, जिनका संचालन वास्तव में राजनैतिक पार्टियों या समूहों द्वारा किया जाता था, और के.एफ.सी.एस. जिसे सामुदायिक प्रबन्ध के लिए केन्द्रित संस्था के रूप में माना जाता है, में अन्तर स्पष्ट दिखता था क्योंकि इनकी कार्यशैली–गैर–राजनैतिक थी । के.एफ.सी.एस. की आन्तरिक गतिशीलता गांव के विभिन्न वन उपभोक्ता समूहों के बीच की अन्तर्क्रिया है जिसे साम्यता और टिकाऊपन की दिशा में मोड़ा जा सकता है ।

के.एफ.सी.एस. का नेतृत्व सीमित व बिखरा हुआ था, बावजूद इसके दो अवसरों पर उन्होंने राजतन्त्र का प्रभाव पूर्ण उपयोग किया । नूरपुर वन रेंज की के.एफ.सी.एस. गहीन लगोड़ के वन में से एक लिंक सड़क का सर्वेक्षण किया गया जिसके लिए यू.पी. 29 में 40 खैर के पेड़ काटने पड़े थे । इस जोड़ सड़क का निर्माण अवश्यकरणीय था, इसलिए के.एफ.सी.एस. ने पेड़ों को काट कर अपने अधिकार में ले लिया । जब उन्होंने स्थिति से अवगत करवाने और राय लेने के लिए वन मण्डल अधिकारी को लिखा तो उसने इस कार्यवाही को अवैध घोषित कर दिया ।

वास्तव में काटे गए पेड़ों की संख्या से कम की प्रविष्टी राखे के कागजों में पाकर उसने लकड़ी जब्त कर ली और उसकी नीलामी कर दी । इससे के.एफ.सी.एस. में असंतोष पैदा हुआ । तदनन्तर वन विभाग ने के.एफ.सी. एस. के जंगल में कुछ परिपक्व अवस्था को पहुंचे खैर के पेड़ काट दिए

जबकि संख्या में कम पेड़ अंकित किए गए थे, और उनकी जन-साधारण के सम्मुख नीलामी कर दी । के.एफ.सी.एस. ने कटान का ध्यानपूर्वक अन्वेक्षण (मॉनिटर) किया और तत्काल वनमन्त्री से इसकी शिकायत कर दी और उन्हें मौके के निरीक्षण के लिए भी रजामन्द कर लिया । वन मन्त्री ने काटे गए 40 खैर के पेड़ों के ठूंठ और खैर के 50 स्लीपरों को देखा जो निम्न स्तरी वन कर्मचारियों की मिलीभगत से एक स्कूल में रखे गए थे । वन मन्त्री ने वन मण्डल अधिकारी को रेंज अफसर व वन विभाग के इस मामले से जुड़े कर्मचारियों को निलम्बित करने के आदेश दिये और एक पुनरावलोकन बैठक धर्मशाला में बुलाई[28] ।

दूसरे मामले में, के.एफ.सी.एस. के बारे में, सरकार द्वारा स्पष्ट नीति घोषित न करने के कारण, कुछ सोसाइटियों के नेतृत्व ने स्थानीय विधायक से सम्पर्क करके के.एफ.सी.एस. की स्थिति और हि.प्र. वन मन्त्रालय की सोसाइटियों के भविष्य सम्बन्धी योजना पर विधान सभा में प्रश्न उठवा दिया[29], वनमन्त्री ने विधानसभा में ब्यान दिया कि "हि.प्र. सरकार ने परियोजना को आगे बढ़ा दिया है और 72-73 के लिए अनुदान भी दे दिया है, उसके बाद नहीं दिया ।

"वनमन्त्री ने सभी के.एफ.सी.एस. को बिना शर्त अनुदान राशि जारी करने की मांग को खारिज कर दिया । यह आश्वासन दिया गया कि जो सोसाइटियां सही प्रकार से काम कर रही है उनके बारे में अनुदान की संभावना पर गौर किया जा सकता है ।"

जिला वन सहकारी सभा संघ

1990-2000 के दशक के आरम्भिक काल में जिला के सक्रिय नेतृत्व ने निर्णय किया कि किसी संगठित मंच का, संयुक्त कार्यवाही के लिए न होना, प्रभावी परिवर्तन लाने के उनके प्रयासों को सीमित करने का महत्वपूर्ण कारण था। के.एफ.सी.एस. को पुनर्जीवित करने के लिए दबाव बढ़ाने के लिए एक संघर्ष समिति गठित की गई परन्तु वह अधिक सक्रिय न हो सकी और अधिक देर तक बनी न रह सकी । तदनन्तर के.एफ.सी.एस. ने कांगड़ा जिला वन सहकारी समिति संघ को सभी के.एफ.सी.एस. के संघ के रूप में गठन किया। इस संघ को 27 जुलाई 1996 (पंजीकरण क्रंमाक 418) में एक सहकारी सभा

के रूप में पंजीकृत किया गया और इसका मुख्यालय घुरकड़ी के.एफ.सी.एस. में रखा गया । पंजीकरण के बाद की गई इसकी पहली बैठक में, वन विभाग को के.एफ.सी.एस. के वनों का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने से रोकने के लिए उच्च न्यायालय और आवश्यकता पड़े तो सर्वोच्च न्यायालय[30] के हस्तक्षेप की मांग करने का निर्णय किया । के.एफ.सी.एस. का मत था कि सरकार के.एफ.सी.एस. योजना की अधिसूचना रद्द करने में असफल रहीं और सहकारिता विभाग ने के. एफ.सी.एस. को परिसमाप्त नहीं किया । इसकी दूसरी मांगों में, इसके आय के साधनों (हक चोहारम, बिरोजा और सहायक अनुदान) की बहाली, साथ ही उनकी अपने वनों की कार्य योजना बनाने व उसे क्रियान्वित करने की, उनके संरक्षण व इमारती लकड़ी के (विशेष कर गृह उत्सवों के लिए किए गए) आंबटन का पर्यवेक्षण करने की शक्तियां पुनः प्राप्त करना शामिल था । उपरोक्त में से अन्तिम मांग इसलिए महत्वपूर्ण थी क्योंकि लकड़ी की कमी एक मुख्य समस्या बन चुकी है । के.एफ.सी.एस. इस बात की आवश्यकता स्वीकारती है कि, महिलाओं और बरतनदारों को अधिक सक्रिय भूमिका देना, और सान्झा वानिकी के मौलिक प्रबन्ध-सिन्द्धातों से सहमत होना, सुनिश्चित करने के लिए बाई-लॉज (उपनियमों) में संशोधन करना पड़ सकता है । वन-सहकारी सभा संघ का विश्वास है कि के.एफ.सी.एस. द्वारा सामुहिक प्रबन्ध, हिमालय के वनों की दुर्गति को रोक सकता है । उसका एक लक्ष्य के.एफ.सी.एस. को, आने वाले वर्षों में सम्पूर्ण हिमाचल में फैलाना है ।

क्षेत्र के स्थानीय विधायक श्री बी.बी.एल. बुटेल 1999 में वन महोत्सव के दिन के.एफ.सी.एस. के वन में पेड़ लगाते हुए ।

तालिका न. 3 : दावेदार संस्थाओं द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण

दिए गए विभिन्न तर्कों का संक्षेप और लेखक द्वारा की गई टिप्पणियां ।

वन विभाग द्वारा अपनाया गया रूखः

उन वनों को जो के.एफ.सी.एस. के अधीन थे, अपने हाथ में लिए जाने के लिए वन विभाग विभिन्न विरोधाभासी तर्क प्रस्तुत करता है ।

1. वन विभाग का मत है कि जो जमीनें के.एफ.सी.एस. को दी गई थी वे पंचायत की थी और जब वर्ष 1974 में 'एच.पी. विलेज कॉमन लैण्ड वैस्टिंग एण्ड युटिलाईजेशन अधिनियम' के अन्तर्गत सभी शामलात भूमि वन विभाग में निहित कर दी गई तो के.एफ.सी.एस. को उन भूमियों को प्रबन्ध के लिए देने का और उनके प्रबन्ध के लिए वित्तीय सहायता के रूप में सहायक अनुदान देने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता ।

टिप्पणी

वास्तव में के.एफ.सी.एस. 1945 में गठित की गई और इसी वर्ष इन भूमियों का स्वामित्व भी उन्हें दिया गया, जबकि भूमि पंचायतों को तो 1961 में दी गई । इसके अतिरिक्त के.एफ.सी.एस. की कुल भूमि में शामलात भूमि मात्र 1 प्रतिशत है । सम्भवता: इस राज्य के लोगों के इन वनों तक पहुंच और उपयोग के अधिकारों पर कुछ अन्य तत्व भी प्रभाव डाल रहे थे । 1972 और 1974 के बीच पास किए गए भू-सुधार अधिनियमों के अन्तर्गत सरकार ने सारी शामलात भूमि का स्वामित्व वन विभाग के नाम स्थानान्तरित कर दिया - जो सरकार के अपने बन्दोवस्तों द्वारा एक शताब्दी से अधिक समय तक खेवटदारों में निहित रही थी । बिना किसी विचार विमर्श के और मालिकों को न्याय-सम्मत मुआवजा दिए इस भूमि पर कब्जा कर लेना इस विचार की पुष्टि करता है कि राज्य सरकार भागीदारी की विरोधी और स्वार्थी है । इसका परिणाम यह हुआ कि इन सार्वजनिक सम्पदाओं तक खुली पहुंच और अन्धाधुन्ध दोहन की स्थिति आ गई और इस सामुदायिक सम्पदा पर विशेष प्रकार की दारूण विपदा आन पड़ी ।

2. वन विभाग का दावा है कि अब हिमाचल सरकार समस्त वन भूमि जिसमें के.एफ.सी.एस. द्वारा प्रबन्धित वन भी शामिल है, की मालिक है और यह कि इस वन भूमि का वैधानिक संरक्षण उसके हाथ में है[31] । और उसका यह भी मत है कि भारतीय वन अधिनियम 1980 के अनुसार सब किस्म की वन भूमि पर सभी राज्यों में उनके अपने-अपने वन विभाग का स्वामित्व होगा । इसलिए कोई सहकारी सभा कानूनी तौर पर इन भूमियों पर अधिकार का दावा नहीं कर सकती

टिप्पणी

पंजाब राज्य में जिस विशेष आदेश से के.एफ.सी.एस. का गठन किया गया उसकी अनदेखी करके के.एफ.सी.एस. जैसे अनोखे प्रयोग पर हिमाचल राजस्व अधिनियम लागू करने का ही यह परिणाम है । इस तर्क का एक और अर्थ है कि वनों और सामुदायिक भूमि पर स्वामित्व के कारण जो अधिकार बनते है। के.एफ.सी.एस. उसका व दावा नहीं कर सकती और न ही के.एफ.सी.एस. के अपने ही प्रबन्ध में जो वन है उनसे गैर इमारती वन उत्पादों की निकासी का उन्हें अधिकार है । वन विभाग इस बात से साफ इन्कार करता है कि

वह स्वंय सरकारी अधिसूचना और विशेष आदेश द्वारा के.एफ.सी.एस. के गठन उन्हें संम्पोषित करने और उनकों प्रबन्ध के लिए वन सौंपने के लिए जिम्मेदार है । सरकार की और से स्पष्ट मार्गदर्शन के अभाव में वन विभाग तकनीकी तर्कों की आड़ में छुप रहा है ।

3. वन विभाग का दावा है कि सरकार द्वारा दी गई के.एफ.सी.एस. योजना को अवधि बढ़ोतरी वर्ष 1973 में समाप्त हो गई और अब यह वन सहकारी सभाएं – अवैध हैं, अनाधिकृत तौर से कार्यरत हैं और सरकारी वनों से राजस्व अवैध साधनों से प्राप्त कर रही हैं । इसलिए उनके लिए कार्ययोजना तैयार करने का वन विभाग के पास कोई कारण नहीं है[32] ।

टिप्पणी

के.एफ.सी.एस. कानूनी तौर पर विद्यमान है क्योंकि उन्हें पंजाब सहकारी अधिनियम (प्प 1912) के अन्तर्गतगठित किया गया था और वे अब हिमाचल प्रदेश सहकारी सभा अधिनियम 1968 के अधीन कार्य कर रही है । 1973 के बाद भी उनमें से बहुत सी अपनी कार्यकारिणी का चुनाव प्रति दो वर्ष में एक बार करती रही है और साथ ही अपने लेखाजोखा की सहकारिता विभाग से प्रतिवर्ष जांच व पड़ताल करवाते हैं । वहीं वन विभाग 1983 तक इन के.एफ.सी.एस. के वनों के लिए कार्य योजनाएं बनाता रहा है जो पहले कहता था कि के.एफ.सी.एस. 1973 के बाद अवैध रूप से कार्य कर रही है । इस प्रकार के दोहरे मानदण्ड जो वन विभाग द्वारा अपनाए गए उससे लगता है कि उनके पास सान्झा वन प्रबन्धन के लिए कोई दीर्घकालिक सम्बद्धता वाली नीति नहीं है ।

4. इस तरह पल्टा–खाने के लिए वन विभाग यह तर्क देता है कि अब की स्थिति 1935 की स्थिति से बड़ी भिन्न है । उस समय असीमांङ्कित वन बड़ी दयनीय दशा में थे और सरकार के पास कोष की कमी थी । अब इन क्षेत्रों में वनरोपण कर दिया है और वन रोपण के लिए क्षेत्र नहीं बचे हैं और सरकार के पास पैसे की कमी भी नहीं है[33] ।

टिप्पणी

इसका अभिप्राय यह लगता है कि के.एफ.सी.एस. का गठन और वन विभाग द्वारा दिया गया सम्पोषण मात्र एक साधन था । जिसका उसने प्रयोग किया क्योंकि उसके पास नष्ट प्राय: वनों की स्थिति सुधारने के लिए पैसे की कमी थी । अब क्योंकि ये वन सफलतापूर्वक पुनर्व्यवस्थित किए जा चुके हैं उन्हें अपने हाथ में लेने, का लालच वन विभाग पर हावी हो गया । ताकि इसके मुख्य लाभ (इमारती लकड़ी) के.एफ.सी.एस. द्वारा न प्राप्त कर लिए जाएं, यह मजबूरी बन गई है । वन संसाधनों में सरकार के निहित-स्वार्थों की इससे बेहतर मिसाल नहीं हो सकती । इससे यह संकेत मिलता है कि सरकार द्वारा हाल ही में सान्झा वन प्रबन्धन व लोगों की भागीदारी के विषय में जो घोषणाएं की गई है उतनी गम्भीरता से नहीं की गई है जितनी कि होनी चाहिए थी ।

1989 में एक वरिष्ठ वानिकी व्यवसाय विशेषज्ञ ने कहा[34], जिसका लिखित विवरण उपलब्ध है, कि क्योंकि सरकार ने 31/3/1972 के उपरान्त सभाओं को चालू रखने की अवधि बढ़ोतरी नहीं दी है, सभाओं को दिए गए वन अब के.एफ.सी.एस. के नियन्त्रण में नहीं हैं । वनों का प्रबन्धन वन विभाग ने अपने हाथ में ले लिया है और अब आगे इन वनों से सम्बन्धित सभी गतिविधियां (वन अपराधों का विचाराधिकार, बरतनदारों को पेड़ देना) केवल वनमण्डल अधिकारी द्वारा संचालित की जाएंगी न कि किसी भी सूरत में सभाओं द्वारा ।

1973 से 1995 को अवधि में वन विभाग यह मानकर चलता रहा कि उसने के.एफ.सी.एस. के वनों पर कानूनी रूप से नियन्त्रण किया है, तदपि अरण्यपाल वन विभाग धर्मशाला (जिला मुख्यालय) इस बात को स्वीकारता है कि कानूनी तौर पर इन वनों पर प्रबन्धकीय अधिकार के.एफ.सी.एस. का ही है । धर्मशाला वृत के मौजूदा अरण्यपाल का विश्वास है कि अभी तक वन विभाग औपनिवेशिक सोच का शिकार रहा है और सहभागी वन प्रबन्ध का सामान्य तौर पर और के.एफ.सी.एस. का विशेषकर विरोध करता रहा है । उसके अनुसार विभाग की यह वर्तमान सोच है कि के.एफ.सी.एस. को पुनर्व्यवस्थित किया जाए और एक बार फिर उन्हें वनों का प्रबन्ध न करने के लिए अधिकृत किया जाए । यह लगता है कि पहले वन विभाग का इमारती लकड़ी व मिलने वाले राजस्व की दृष्टि से वनों में सबल व्यापारिक स्वार्थ

था । परन्तु 1970 और 1985 के बीच के काल में तेजी से वन विनाश हुआ और यहां तक कि वन विभाग का भी नियन्त्रण उन वनों पर से निकल गया, जिनका अभूतपूर्व सीमा तक दोहन किया गया था । अब, इसलिए, विभाग की प्राथमिकता वनों का संरक्षण हो गई है । इस दृढ़ कथन या दावे का असर अभी तक सहभागी वन प्रबन्धन की नीति में सामान्य तौर पर और के.एफ.सी.एस. के सन्दर्भ में विशेषकर प्रतिबिंबित होना बाकी है ।

सहकारिता विभाग द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण

सहकारिता विभाग के सहायक पंजीकार के के.एफ.सी.एस. के बारे में विचार उसके कार्यालय से ही प्रकाशित दस्तावेज जिसका शीर्षक है, "पैरा वाइज़ कमैण्टस फॉर रिवाईवल ऑफ के.एफ.सी.एस." से आंके जा सकते हैं । सहायक पंजीकार, (सहकारी सभाएं) के.एफ.सी.एस. की गलत कार्यशैली को दोषी ठहराता है और इसका कारण, उसके कथन के अनुसार, वन विभाग व सहकारिता विभाग द्वारा के.एफ.सी.एस. को दिए जाने वाली तकनीकी व वित्तीय सहायता का अभाव है । उसका विचार है कि के.एफ.सी.एस. योजना को 1 से 5 वर्ष तक की छोटी-2 अवधि बढ़ोतरियां वन विकास जैसी योजनाओं के लिए न काफी और हानिकारक सिद्ध हुई क्योंकि वन विकास के लिए लम्बी अवधि वांछित होती है । अत: सहायक पंजीकार ने सीधे 30 वर्ष अवधि की बढ़ोतरी का सुझाव दिया है ।

सहायक पंजीकार (सहकारी सभाएं) ने आगे कहा है कि कुछ के.एफ.सी.एस. जिनकी वित्तीय स्थिति कमजोर थी वह सहायक अनुदान बन्द कर दिए जाने से फेल हो गई । उसने सिफारिश की है कि सम्बन्धित के.एफ.सी.एस. को रूका हुआ सहायक अनुदान तत्काल अदा किया जाए ताकि वे अपनी वानिकी गतिविधियां चालू कर सकें । सहायक पंजीकार का कहना है कि वन विभाग को चाहिए कि वह के.एफ.सी.एस. की कार्यकारिणियों और कर्मचारियों को तकनीकी मार्गदर्शन दें ताकि वे वन भूमि का संरक्षण, सुधार व प्रबन्ध कर सकें । उसने एक और सुझाव दिया कि सहकारिता विभाग को अपने भीतर एक अनुभाग स्थापित करना चाहिए जो के.एफ.सी.एस. को बल प्रदान करने का काम करें, जैसी प्रथा पंजाब में थी । सहायक पंजीकार का यह भी मानना है कि के.एफ.सी.एस. को ठीक मार्गदर्शन न मिलने का कारण सहकारिता और वन विभाग के बीच समन्वय का न होना भी था । उसने यह

सिफारिश भी की कि जिला स्तर पर एक समन्वय समिति का गठन किया जाए जिसके, वनमण्डल अधिकारी, उप-पंजीकार (सहकारी सभाएं) और सहायक पंजी सहकारिता विभाग, सभी सदस्य हों और अध्यक्षता वन विभाग के पास रहे । इन सुझावों का कोई लाभ न मिला क्योंकि वन विभाग और सहकारिता विभाग के बीच बैठक और पत्राचार बिना किसी ठोस परिणाम के होते रहे जिसका कारण था कि निर्णायक शक्ति राजनेताओं के पास थी । इसके अतिरिक्त सहकारिता विभाग की भी के.एफ.सी.एस. के लिए कोई स्पष्ट व ठोस नीति नहीं है ।